National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2017; 1(13): 12-15
© 2017 NJHSR
www.sanskritarticle.com

प्रो. डॉ. सदानंद भोसले
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
हिंदी विभाग,
सावित्रीबाई फुले पुणे विद्यापीठ, पुणे. 07

जयराम गाडेकर
पीएच. डी. शोध छात्र,
हिंदी विभाग,
सावित्रीबाई फुले पुणे विद्यापीठ, पुणे. 07

Correspondence:
जयराम गाडेकर
पीएच. डी. शोध छात्र,
हिंदी विभाग,
सावित्रीबाई फुले पुणे विद्यापीठ, पुणे. 07

पारसी रंगमंच का योगदान

प्रो. डॉ. सदानंद भोसले , जयराम गाडेकर

पारसी रंगमंच का अर्थ है- पारसीक कलाकारों द्वारा स्थापित अथवा पारसीक नाट्य कला से उत्प्रेरित मंच को पारसी रंगमंच कहा जाता है। मूलतः पारसी लोग प्राचीन ईरान के है, जो आठवीं शती में भारत आए थे। जिस समय बंगाल में सन् 1870 ई. में व्यावसायिक नाटक की नींव रख रहा था। तब उस समय कुछ पारसी बम्बई मे नाटक और ललित कलाओं में रूचि लेने लगे थे। इसका परिणाम यह हुआ कि पारसियों ने व्यावसायिक हिंदी नाटक की स्थापना करने की पहल की है। तत्कालीन समय में भारत पर अंग्रेजों का शासन काल था। देश-विदेशी लोगों का बम्बई में आना-जाना बढ़ रहा था। सन् 1770 ई. में कुछ विदेशी लोगों ने पारस्परिक सहयोग से 'बम्बई थियेटर' की स्थापना की। सन् 1846 ई. में बम्बई के ग्रांट थियेटर रोड पर जगन्नाथ शंकरशेट के प्रयत्न से 'बादशाही थियेटर' का निर्माण हुआ। मराठी के अलिखित पौराणिक नाटक (विष्णुदासे भावे के) बम्बई में प्रथमतः इसी थियेटर में प्रयोग हुए थे। 'बादशाही थियेटर' में मराठी, गुजराती, अंग्रेजी आदि विभिन्न भाषाओं नाटकों का प्रदर्शन होता था। सन् 1853 ई. में जगन्नाथ शंकरशेट तथा डॉ. भाऊदासी के प्रयत्नों से हिंदी नाटक 'राजा गोपीचन्द' का प्रयोग हुआ। इस नाटक के सफलता के बाद कुछ पारसी लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। पारसी थियेटर की स्थापना सन् 1853 ई. में 'पारसी नाटक मण्डली' के नाम से हुई थी। पारसी थियेटर के उद्भव के संबंध में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने 'वह पारसी थियेटर वास्तव में क्या था' इस निबंध में लिखते हैं- "बम्बई में अठारह सौ उन्यास में ग्रांट रोड पर 'बम्बई थियेटर' बना। इसमें अंग्रेज, पारसी और अंग्रेजी पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियों में मिलकर उन्हीं अंग्रेजो की नकल में अंग्रेजी में ही नाटक खेलना शुरू किया। इसमें तफरीह के साथ-साथ और भी बहुत से लाभ होने लगे। इसकी परिणति यह हुई कि थोड़े ही दिनों बाद इसी परिवेश के भीतर से ही एक कंपनी जन्म ले बैठी, जिसका नाम था 'हिन्दू ड्रामेटिक कोर' इस कंपनी का लक्ष्य था हिन्दुस्तानी जबान में ड्रामा खेलना। यह अपने उस लक्ष्य में सफल हुई। इसके तत्वावधान में नौ मार्च, अठारह सौ तिरपन को जो पहला ड्रामा खेला गया वह था मराठी ड्रामा। फिर खेले गए गुजराती ड्रामे और छब्बीस नवम्बर को उर्दू नाटक खेला गया 'राजा गोपीचन्दर'।"[1] उपर्युक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि 'हिन्दू ड्रामेटिक कोर' ने सारे नाटक किसी-न-किसी अंग्रेजी कंपनी या क्लब की ही मदद से खेले जाते थे। इतना ही नहीं निर्देशक से लेकर मैकअप मैन तक अंग्रेजी ही लोग थे। इनके मण्डली में सिर्फ एक नाटककार और दो अभिनेता रहते थे। रोजगार के दृष्टि से 'हिन्दू ड्रामेटिक कोर' के नाटक ही सफल रहे है। रोजगार के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए पारसियों ने एक के बाद एक नाटक कंपनियों को स्थापित करने लगे।

पारसी थियेटर के संबंध में डॉ. विद्यावती नम्र ने 'हिन्दू ड्रामेटिक कोर और पारसी थियेटर की वास्तविकता' नामक लेख में लिखती हैं- "ऐतिहासिक सच तो यह है कि 1. बंबई थियेटर ग्रांट रोड का उद्घाटन 10 फरवरी, 1848 ई. को श्रीमती डीक्ल के अंग्रेजी कार्यक्रम से हुआ था। 2. अपना रंगमंच होने से निसंदेह अनेक लाभ हुए परंतु इसकी परिणति 'हिन्दू ड्रामेटिक कोर' के जन्म से नहीं हुई। इसका जन्म तो स्व. श्री विष्णुदास अमृत भावे द्वारा शुद्ध भारतीय स्वरूप में सन् 1843 ई. में सांगली में पहले हो चुका था, जहाँ इसे सांगली संस्थान के अधिपति श्रीमंत चिंतामणिराव अप्पासाहब का राज्यश्रय भी प्राप्त था।. . . सन् 1853 ई. में जब यह कंपनी अपनी दूसरी यात्रा में बंबई आयी, तब अंग्रेज नाटक कंपनी की टीपटाप, पर्दे तथा बैठने की सुविधा देखकर भावे जी बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी मित्र मण्डली और परममित्र डॉ. भाऊदा लाड के प्रयत्नों से यह थियेटर अपने नाटकों के लिए प्राप्त कर लिया। इसी थियेटर में उन्होंने 9 मार्च, 1953 को 'सुलोचना सहगमन' और 'अश्वमेध यज्ञ' तथा 'लवकुश' मराठी आख्यान अभिनीत किए।"[2] उपरोक्त विषय अधिक जानकारी तत्कालीन 'दी बाम्बे टाइम्स' में दिनांक 13 मार्च, 1953 ई. के समाचार पत्र के संपादकीय लेख में प्रकाशित है।इन समग्र विद्वानों के मतों को देखकर कहा जा सकता है कि पारसी नाटक कंपनियों पर मूलतः अंग्रेजी नाटक कंपनियों के अभिनय का प्रभाव रहा था। पारसियों ने अंग्रेजों से अभिनय शैली ग्रहण की और उनकी टेकनीक भी ग्रहण की। अंग्रेजी कंपनियों के प्रदर्शन में जो तड़क-भड़क का ज्यादा आकर्षण था। लेकिन पारसी कंपनियों में न के बराबर था और पारसियों ने व्यावसायिक रंगमंच की स्थापना की। पारसी

रंगमंच का उद्गम स्थान बंबई था और केंद्र कलकत्ता, दिल्ली रहे है।

पारसी रंगमंच शुरूआती में साधन-विहीन थे लेकिन धीरे-धीरे रंगमंच के संबंध में सभी उपकरण खरीद लिए। इन कंपनियों के पास विशेष प्रकार के यंत्र होते थे। डॉ. रामजन्म शर्मा कहते हैं कि ''जिनके द्वारा देवों को हवा में उड़ता हुआ दिखाया जाता था, हीरो को महल की दिवार से नदी में छलांग लगाते हुए दिखाया जाता था, परियों को आकाश से उतरते हुए दिखाया जाता था।''[3] इससे स्पष्ट है कि कंपनी के पास इस प्रकार यंत्र थे। इससे चमत्कारिक दृश्य दिखाकर दर्शको को मनोरंजन पैदा करते थे। इस तरह का यंत्र का निर्माण उन्नीसवीं शताब्दी के लंदन 'ड्रूरीलेन थियेटर' में दिखाया जाता था। इसका ही अनुकरण पारसी थियेटर ने किया है। इन कंपनियों के पास स्वतंत्र नाटककार और रंग-निर्देशक थे। स्त्री पात्र का अभिनय पुरुष पात्र ही करते थे कुछ दिनों के बाद नर्तकियाँ और वेश्याएँ भी सहभाग लेने लगी। पहले इस कंपनियों ने शेक्सपीयर के नाटक अंग्रेजी एवं गुजराती में प्रस्तुत किए। ईरानी नाटकों के फारसी गीतों को मराठी के लय या शैली में प्रस्तुत किए गए। पारसी थियेटर में क्रांति लाने वाले ''स्वः दादाभाई पटेल ने सन् 1870 ई. में फारसी गानों को हिंदी राग-रागिनियों में पेश किया।''[4] इस कंपनियों की नाटकों की भाषा साहित्यिक दृष्टि से परिनिष्ठित नहीं थी क्योंकि उसमें हिंदी, उर्दू एवं फारसी का मिश्रण रहता था। एक ओर विशेषता थी कि इसमें शेर-शायरी की अधिक मात्र थी। शैली सशक्त, कार्य-व्यापार प्रभावशाली एवं तीव्र था, संवाद चुस्त रहते थे। नाटकों में हास्य अभिनय का प्रयोग अधिक मात्रा में रहता और नाटकों का विभाजन तीन-चार अंकों में होता था। पारसी थियेटर के लिए प्रमुख नाटककार एवं उनका नाट्य साहित्य निम्नरूप में स्पष्ट है- 1) आगा हश्र कश्मीरी - 'शहीदे नाज', 'सफेद खून', 'ख्वाबे हस्ती', 'सैदे-हबस', 'बिल्वमंगल', 'आँख का नषा' आदि। 2) पं. नारायण प्रसाद 'बेताब'- 'गोरखधन्धा', 'महाभास', 'कृष्णा सुदामा', 'रामायण' आदि। 3) राधेश्याम कथावाचक- 'वीर अभिमन्यु', 'कृष्णावतार', 'श्रवणकुमार', 'मशरिकी हूर' आदि। 4) किशनचन्द्र जेबा- 'शहीद संन्यासी', 'जख्मी हिंदू' आदि। 5) तुलसीदत्त शैदा- 'जनक नंदनी' 6) जमुनादास मेहरा- 'कन्या विक्रय', 'देवयानी', 'आदर्श बंध' आदि प्रमुख नाटककार रहे है।

पारसी कंपनियों के नाटक रात के 10 बजे से सुबह 3-4 बजे तक चलते थे। नाटक की शुरूआत मंगलचरण, कोरस से होती थी। नाटकों में सुख-दुख का समन्वय रहता था। नाटकों में संगीत के लिए तबला, हारमोनियम, वायलिन का भी प्रयोग होता था। मार-पीट, हत्या, प्रेम-प्रसंग, युद्ध का वर्णन अत्यंत मार्मिक ढंग से किया जाता था। नाटक देखने वाले दर्शक पहले से ही अभिनेता के बारे में जान लेते थे तभी दर्शक भीड़ जमा करते थे। सफल नाटक पारसी रंगमंच पर एक-एक महीनों तक चलता था। यह व्यावसायिक रंगमंच होने के कारण जनसमुदाय अधिक आकर्षित करने के लिए मनोरंजन के नाम पर पारसी रंगमंच अधिकाधिक तड़कीला-भड़कीला और फूहड़ दृश्य दिखाते गए। इसके कारण सभ्य, सुसंस्कृत समाज उससे कटता गया। कुछ विद्वानों ने उसे घटिया, बाजारू और अश्लील भी कहा गया है। कुछ भी हो तमाम कमियों के बावजूद हिंदी रंगमंच के विकास में पारसी रंगमंच का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व है। इस संदर्भ में बलवंत गार्गी कहते हैं- ''भारतीय नाटक के इतिहास में पारसी थियेटर को नये आलोचकों ने उचित स्थान नहीं दिया। वे इसको घटिया, बाजारू और रंग-बिरंगे सीनवाला थियेटर कहकर निंदा करते हैं। लेकिन गहरी दृष्टि डालने से पता चलता है कि इन्होंने उस समय समस्त भारत में नाटक के क्षेत्र को विस्तृत करने में बहुत काम किया है।''[5] इस कथन से स्पष्ट है कि पारसी थियेटर का योगदान को भूला नहीं जा सकता। पारसी थियेटर से ही हिंदी रंगमंच को एक दिशा मिली है। पारसी रंगमंच का व्यावसायिक दृष्टि से अनेक नाट्य मण्डलियों का जन्म हुआ। इनमें से बहुत सी नाटक मण्डलियाँ अधिकांश भ्रमणशील रही हैं जो अपने नाटकों के प्रयोग के लिए देश के विविध प्रांतों में भ्रमण करती थी। मैंने प्रातिनिधिक तौर पर पारसी मण्डलियों की जानकारी निम्न रूप में दी है-

विक्टोरिया नाटक मण्डली:

इस मण्डली की स्थापना सन् 1862 ई. में हुई। इस मण्डली का व्यावसायिक रूप सन् 1868 ई. में प्रकाश में आई। शुरूआती के दौर में इस मण्डली के मंच पर गुजराती नाटकों का प्रयोग होता था। लेकिन व्यावसायिक दृष्टि से विस्तृत क्षेत्रों का दौरा करने के बाद हिंदी भाषा में नाटकों का प्रयोग करने लगे। डॉ. लक्ष्मीनारायण भारद्वाज कहते हैं- ''सन् 1872 ई. में हैदराबाद के दीवान के आमंत्रण पर हैदराबाद जाकर इस मण्डली ने प्रथम पहल उर्दू-हिंदी नाटकों को प्रदर्शन की। नसखान साहेब 'आराम' इस कंपनी के पहले हिंदी नाटककार थे। इसके उपरांत विनायक प्रसाद तालिब इस मण्डली के विशिष्ट नाटककार हुए हैं। मण्डली ने अपने दिल्ली प्रवास में 'आराम' कृत 'गोपीचन्द' हिंदी नाटक को प्रथमतः मंचस्थ किए।''[6] इस कथन से स्पष्ट है कि उर्दू और हिंदी नाटकों का प्रयोग किया था। इस मण्डली ने 'लैला-मजनूं', 'छैल-बटाऊ मोहना रानी का', 'पद्मावत चन्द्रावली' तथा तालिब कृत 'सत्य हरिश्चंद्र', 'रामायण', 'विक्रमविलास', 'सोने के मूल की खुरशीद', 'इंदर सभा' आदि नाटकों का प्रयोग किया है। इस मण्डली में दादाभाई ढूँठी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। दादाभाई ढूँठी ने कलाकारों के लिए नियम भी बनाये थे, लेकिन यह नियम कुछ हद सही रहे और कुछ हद तक गलत भी रहे है। बाद में दादाभाई ढूँठी ने मण्डली को छोड़ देने का उल्लेख मिलता है।

हिंदी नाटक मण्डली:

प्रस्तुत मण्डली की स्थापना दादाभाई रतनजी ढूँठी ने 'विक्टोरिया नाटक मंडली' को छोड़ने के बाद की है। इसमें अच्छे-अच्छे कलाकारों को सम्मिलित करते थे। नाटक मण्डली के दादाभाई रतनजी ढूँठी (मालिक, निर्देशक और अभिनेता), दादी मिस्त्री, अरदेशर सर्राफ, जहाँगीर पेस्तनजी खभाता, कावसजी कालिंगर, नवरोज बाटला, नवरोजजी एदलजी तंबोली, कावजी पालनजी खटाऊ, कावसजी मिस्त्री, जमशेदजी दाजी, फरामजी दलाल, जहाँगीर मीनवाला, बरजोरजी कुटार, माणिकजी कांगा आदि प्रमुख सद्स्य रहे है। इस मण्डली ने ग्रांट रोड पर मुस्लिम कब्रस्तान के पास नाटक खेलने के लिए थियेटर का निर्माण किया था। इस मण्डली की विशेषताएं थी कि उसे कही पर भी उठाकर ले जा सकते हैं। इस मण्डली के नाट्यप्रयोग के संबंध में डॉ. चन्दुलाल दुबे लिखते हैं- ''इस नाटक मंडली का पहला नाटक था 'बेनजीर'। यह नाटक 'बेनजीर बदरेमुनीर' पर आधारित था। जहाँगीर खंभाता ने इसमें महारुख परी का अभिनय किया था। अरदेशर सर्राफ बेनजीन बने थे। इसके बावजूद भी नाटक असफल ही रहा। फिर केशखरू कावराजी ने अपना नाटक 'फरेदुम' खेलने दिया।''[7] यह 'फरेदुम' नाटक काफी सफल रहा है। यह मण्डली सन् 1873 ई. में बंद हो गई।

रामहाल (राममहाल) नाटक मण्डली:

प्रस्तुत मण्डली की स्थापना ईश्वरी नारायण वाजपेयी ने सन् 1900 ई. में की है। इस नाटक मण्डली के निजाम और मुहम्मद हुसेन रामपुरी मण्डली के निर्देशक थे, रामेश्वर प्रसाद शुक्ल हारमोनियम मास्टर थे, कन्हैयालाल दुबे मंच व्यवस्था का काम करते थे। इस मण्डली के मंच व्यवस्था के बारे में डॉ. लक्ष्मीनारायण भारद्वाज कहते हैं- ''इस मण्डली के मंच का आकार 60-60 फुट था जिसके अग्र में पंद्रह-पंद्रह फुट के पार्श्वों (विंग्स) के मध्य 30-30 फुट का मुख्य रंगपीठ था जिसके पिछले भाग की चैड़ाई 24 फुट, ड्राप 28 फुट चैड़ा और 18 फुट ऊंचा रहता था। रंगपीठ के पीछे आधे भाग में नेपथ्य था, जहां रूप सज्जा कक्ष, सीन-सीनरी अन्य मंचोपकरणों के रखने की समुचित व्यवस्था थी।''[8] इससे स्पष्ट हो जा है कि मण्डली की मंच व्यवस्था कितनी विस्तृत रही है। इस मंच पर तालिब

कृत 'सत्य हरिश्चन्द्र', अहसन कृत 'चन्द्रावली', 'बकावली', 'मुहब्बत का फूल', बेताब कृत 'जहरी सांप', 'महाभारत' आदि नाट्य प्रदर्शन विशेष सफल रहे हैं। यह मण्डली उत्तर प्रदेश के अन्य जगहों पर भी नाटकों का प्रदर्शन करती रही है। यह मण्डली सन् 1915 ई. के बाद सीतापुर, फर्रुखाबाद, कन्नौज, कासगंज, जौनपुर, जबलपुर आदि जगहों पर भ्रमण करके नाटकों का मंचन करती रही। इसी शताब्दी के दूसरे दशक में नाटक मण्डली बंद हो गई।

व्याकुल भारत नाटक कंपनी:

इस नाटक मण्डली की स्थापना सन् 1921 ई. में मेरठ में हुई। इस कंपनी का उद्देश्य के बारे में प्रख्यात नाटककार गोविंद वल्लभ पंत कहते हैं कि नाटक लिखने में कंपनी का आदर्श था, भावों की स्पष्टता, भाषा में सरलता थी। इस मण्डली ने 'गौतम बुद्ध', 'भगवान बुद्ध', 'बुद्ध', 'तेग ए सितम', 'सम्राट चन्द्रगुप्त', 'प्रेमयोगी' आदि नाटकों का मंचन किया है। इन मण्डली ने प्रथम भारत के राजधानी दिल्ली के लाल किले के समीप 'बुद्ध' नाटक का प्रदर्शन किया। इस नाटक का उद्घाटन देशभक्त और हकीम अजमल खाँ ने किया था। यह कंपनी बहुत दिन तक सुचारू रूप से नहीं चली। व्याकुल जी ने कंपनी से अलग होने का बयान इस प्रकार कहते हैं- "शेयर होल्डर्स के भी झगड़े उठे, कंपनी में 'प्रमुखता' भी सभी चाहते थे। यह भी चक्कर आखिर चला, प्रबंध करते-करते मैं बीमार पड़ा और कंपनी छोड़कर चला आया।"[9] इस कथन से स्पष्ट है कि व्याकुल जी मण्डली छोड़कर चले गए। यह कंपनी पारसी रंगमंच का अनुकरण करती थी। इनके नाटक के मंचन से हिंदी को भाषा को उचित स्थान मिला जो अन्य मण्डली में से नहीं मिला। क्योंकि इस मण्डली ने नाटक की भाषा शुद्ध हिंदी का प्रयोग करने पर जोर दिया था। अतः इस मण्डली का हिंदी रंगमंच और हिंदी भाषा को समृद्ध बनाने में काफी योगदान रहा है।

अल्फ्रेड नाटक मण्डली:

इस मण्डली की स्थापना सन् 1871 ई. में कावसजी पालनजी जीवनजी मास्टर और मुहम्मद अली के प्रयास से हुई थी। लेकिन सन् 1890 ई. के आस-पास में यह मण्डली दो भागों में विभाजित हो गई। दोनों कंपनियाँ अमृत केशव नायक एवं सौराबजी फ्रामजी ओग्रा के कुशल निर्देशन में कार्यरत रहीं। इन मण्डलियों के हिंदी नाटक अत्याधिक लोकप्रियता मिली थी। इस मण्डली के संबंध में श्री लक्ष्मीनारायण भारद्वाज लिखते हैं- "अमृत केशव के कुशल निर्देशन में ही काशी की नागरी नाट्यकला प्रवर्तन मण्डली ने भारतेंदु, राधाकृष्णदास प्रभृति नाटककारों की कृतियों को मंचीकृत किया। अपने हिंदी नाटकों के प्रदर्शन के लिए यह मण्डली समय-समय पर उत्तर भारत का दौरा किया करती थी। राधेश्याम कथावाचक इस मण्डली के प्रमुख नाटककार थे। सन् 1932 ई. तक यह मण्डली किसी प्रकार कार्यरत रही परंतु व्यावसायिक दृष्टि से अत्याधिक हानि होने के कारण सन् 1932 में यह मण्डली बंद हो गई।"[10] इस कथन से स्पष्ट है नाटक मण्डली ने यात्रा करके नाटकों का मंचन किया लेकिन व्यावसायिक दृष्टि से मण्डली सफल नहीं हुई। मण्डली की आर्थिक स्थिति खराब हो जाने के कारण मण्डली को कलकत्ते के 'मॉडर्न थियेटर लिमिटेड' को बेच दिया। इस मण्डली के मंच पर स्त्री पात्रों को पुरुष ही निभाते थे। कुछ दिनों के बाद धीरे-धीरे महिलाएं भी भूमिकाएं करने लगी।

ओरिजिनल विक्टोरिया नाटक मण्डली:

यह मण्डली सन् 1877 ई. में स्थापना हुई। सन् 1874 ई. तक 'विक्टोरिया नाटक मण्डली' ठीक चली थी। लेकिन दादी पटेल और कुंवरजी नाज़र में मतभेद होने लगा। इसीलिए दादी पटेल 'विक्टोरिया नाटक मण्डली' से अलग हो गए और इस मण्डली की स्थापना की है। दादी पटेल ने नाटक मण्डली में पहले 'इंदरसभा' नाटक खेला गया। दादी पटेल ऐसे व्यक्ति है जिन्होंने नाटक मण्डली में स्त्री भूमिकाओं के लिए औरतों को नियुक्त करने की शुरूआत की थी। इस मण्डली के संबंध में चन्दूलाल दुबे लिखते हैं- "बंबई में जब इस मण्डली के नाटक सुचारू रूप से चलते तब दादी पटेल अपनी मंडली लेकर दक्षिण की यात्रा पर निकले। सन् 1876 ई. में मंडली के साथ मैसूर पहुँचे। मैसूर में 'इंद्रसभा' और 'गुलबकावली' का प्रदर्शन हुआ। मंडली मैसूर से मद्रास गई।... दादी पटेल ने 'शकुंतला' नाटक में जो जोगियों का दृश्य प्रिंस को दिखाया और बदले में पाँच हजार रूपये प्राप्त किये। यहाँ से कंपनी हैदराबाद गई जहाँ दादी पटेल बीमार हो गये। डॉ. धनजीभाई पटेल के अनुसार मंडली मद्रास से बंगलौर लौट आई। बंगलौर में दादी पटेल बीमार हो गये। बीमार होने पर दादी पटेल बंबई आये। पेट की शल्यक्रिया के कारण 17 मार्च को 32 वर्ष की अल्पायु में दादी पटेल की मृत्यु हुई।"[11] इससे स्पष्ट है कि मण्डली ने दक्षिण भारत में यात्रा करके नाटक खेले गए। दादी पटेल का देहांत होने के बाद सेठ पेस्तनजी फरामजी मांदन, नसरवानजी फरामजी मादन, काबसजी नसरवानजी दारूवाला और भीखाजी नसरवान आदि लोगों ने मंडली के भागीदार बने। इन्होंने 'शरारे इश्क' और 'तंबीहुल गुरुर' उर्दू नाटक खेले जाने का उल्लेख भी मिलता है। आमदनी ठीक न होने के कारण एक-एक अभिनेता मंडली से अलग-अलग होने लगे। फिर नशरवानजी मादन ने कंपनी का सारा सामान बेच दिया और नाटक कंपनी हमेशा के लिए बंद की गई।

दी पारसी नाटक मण्डली:

इस नाटक मण्डली की स्थापना सन् 1903 ई. में हुई। इस मण्डली की स्थापना दिनशा दादाभाई अप्पू, नवलूँ, मजगाम वाला, दोराब बजाँ और फरामजी अपु आदि लोगों नें मिलकर की। इन मण्डली के सदस्यों ने एक मत से निर्णय लिया कि मंच पर स्त्रियों को अभिनय करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इस मण्डली ने लतीफा बेगम को तनख्वाह देकर चयनित किया था। इनको लेकर विक्टोरिया थियेटर में 'इंद्रसभा' नाटक भी खेला गया। इस मण्डली में स्थायी अभिनेता के अतिरिक्त पारसी मैकेनिक, मिस्त्री, एक पेंटर आदि लोग थे। इस मण्डली कभी-कभी बंबई छोडकर भी नाटक खेलती थी। इस मण्डली ने 'लैला मजनू', 'बेनजीर बदरे मुनीर', 'पद्मावत', 'शकुंतला', 'जहाँगीरशाह गौहर', 'छैल बटाऊ', 'मोहिनी रानी' आदि नाटकों का प्रस्तुत किए है। इन नाटकों के लिए गीत 'आराम' ने लिखे हुए थे। इस मण्डली के फरामजी दादाभाई अपु की मृत्यु बंबई में हुई और दिनशा दादाभाई अपु का स्वर्गवास मद्रास में हो गया तो यह मण्डली में कमजोर पड़ गई। अन्त में इस मण्डली का सारा सामान कलकत्ता के. जे. एफ. मादन की कंपनी ने खरीद लिया था। अतः इस कंपनी ने देश में यात्रा करके नाटकों को प्रस्तुत किया और अंत में नाटक मण्डली बंद हो गई।

मूनलाइट थियेटर्स:

इस थियेटर्स की स्थापना सन् 1939 ई. हुई है। सन् 1946 ई. में गोवर्द्धन मेहरोत्रा ने थियेटर्स को व्यावसायिक आधार पर सुव्यवस्थित शुरू किया। इस थियेटर्स के संबंध में डॉ. चन्दूलाल दुबे कहते हैं- "उन्होंने प्रेमशंकर को निर्देशक के रूप में रखा। सीतादेवी अभिनेत्री की भी नियुक्ति कर ली। इसमें प्रत्येक सप्ताह 13 प्रदर्शन (SHOW) किये जाते थे- मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार, शुक्रवार और शनिवार को प्रत्येक दिन दो-दो और रविवार को मैटिनी सहित तीन प्रदर्शन। सोमवार अवकाश का दिन रहता था। हिंदी (खडी बोली) के नाटक प्रायः बुधवार, बृहस्पतिवार, शनिवार और रविवार को तथा राजस्थानी के खेल मंगलवार और शुक्रवार को होते थे।... यह शनिवार को नया खेल प्रारंभ करने की प्राचीन परिपाटी में एक नया मोड़ था जिसे लाने का श्रेय मूनलाइट थियेटर्स को है।"[12] इससे स्पष्ट होता है कि थियेटर्स के नाटकों के प्रयोग की समय सारिणी कितनी प्रतिबद्ध होती थी। इस थियेटर्स ने बी. सी कृत 'पूरन

भगत', 'नलदमयंती', शकुंतला' और 'चंद्रगुप्त', चतुरसेन शास्त्री कृत 'हिंदू कोडबिल', रणधीर सिंह कृत 'देश के लिए' (1950), 'भगवान परशुराम'(1951), 'वीर कुँवरसिंह' (1952), 'रानी सारंधा' (1953), 'पिया मिलन' (1954) आदि। राधेश्याम कथावाचक कृत 'कृष्णसीता' (1953), कुमार सलेम पुरी कृत 'भोला भगत' (1955), और 'लाड़ला कन्हैया' (1960) इन सभी नाटकों में सीतादेवी ने नायिका की भूमिका की है। इस थियेटर्स के नाट्य प्रयोग के संबंध में उल्लेख मिलता है कि लगभग ढाई सौ नाटक खेले गए है। मास्टर फिदा हुसैन 22 मार्च, 1968 मूनलाइट थियेटर छोड़कर मुरादाबाद चले गए। मास्टर फिदा हुसैन चले जाने के बाद मूनलाइट थियेटर्स की कमान त्रिलोचन झा ने संभाली थी। लेकिन वर्ष के भीतर ही इस थियेटर्स को बंद करना पड़ा।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि पारसी मण्डलियों ने हिंदी रंगमंच को पृष्ठभूमि तैयार करने में योगदान दिया है। इन पारसी मण्डलियों के अतिरिक्त भी और भी पारसी मण्डलियाँ है। जैसे- 'दी पारसी कौंरोनेशन थियेट्रिकल कंपनी, कलकत्ता' (1937), 'शाहजहाँ थियेट्रिकल कंपनी' (1938), 'हिंदुस्थान थियेटर्स, कलकत्ता' (1946), 'मिनर्वा थियेटर' (1945), 'पारसी एलफिस्टन ड्रैमेटिक क्लब, मुंबई' (बंबई), 'पशियन जोरास्त्रियन नाटक मण्डली' (1870), 'दि शाहे आलम नाटक कंपनी' (1875-76), 'तन्तुपुरस्थ नाटक मण्डली, धारवाड' (1880), 'बिहार थियेट्रिकल ट्रप' (1884), 'जुबली थियेटर कंपनी' (1885), 'जमादार की नाटक कंपनी', 'आगरे की कंपनी' (1899), 'कोरंथियन नाटक मण्डली, कलकत्ता, 'आर्टस सेंटर हाल (पँवार थियेटर) (1934), 'शाहजहाँ थियेट्रिकल कंपनी' (1938), 'कारोनेशन थियेट्रिकल कंपनी ऑफ जोधपुर' आदि नाटक मण्डलियों का भी योगदान रहा है। पारसी थिएटर ने प्रायः गुजराती, मराठी, हिंदी, उर्दू, पारसी, बंगाली आदि कई भाषाओं में नाटक लिखे जाते थे और खेले भी जाते थे। इन नाटकों में गद्य-पद्य, शेरो-शायरी आदि सभी का प्रयोग पात्रों के अनुकूल हुआ करता था। गद्यों को सशक्त रूप में बोला जाता था। कई अन्य नाटकों में पद्य का भी जोर रहा। शेरो-शायरी की भाषा पुरुष पात्र बोलते तो नारी पात्र गद्य शैली में। हिंदी भाषा का प्रारंभ पारसी थियेटर के नाटककारों में 'बेताब' और राधेश्याम कथावाचक ने किया। पारसी रंगमंच का अवतरण उस समय हुआ था। जब हमारी लोकनाट्य परंपरा का पतन हो रहा था। हिंदी का अपना कोई रंगमंच ही नहीं था और बहुत समय के बाद ऐसा रंगमंच लोगों के सामने आया था। यह रंगमंच इतना प्रसिद्ध हुआ कि व्यावसायिक-अव्यावसायिक रंगकर्मी भी बच नहीं पाए। पारसी रंगमंच के कारण ही आगे आनेवाले रंगमंच को एक नई दिशा प्रदान की गई है। पारसी रंगमंच दिल्ली दरबार से लेकर 1935-36 तक लगभग चार दशकों तक जीवित रही। इस पारसी रंगमंच की कुछ प्रमुख विषेशताएं थी। जैसे नाटक का आरंभ सामूहिक वंदना से होता था, प्रयोग किए जाने वाले नाटक प्रेम कथाओं और पौराणिक कथानकों के संबंध में होते थे, प्रेक्षकों का मनोरंजन के लिए मुख्य कथा के साथ गौण कथा (हास्यात्मक) भी चलती थी।, नाटकों में श्रृंगारिक गीतों और नृत्यों की प्रधानता रहती थी। पात्रों की वेशभूषा कीमती और भड़कीली होती थी। मंच पर रोमांचकारी दृश्यों के सेट बनाये जाते थे। सन् 1935 ई. के आस-पास पारसी रंगमंच का अन्त हो गया और अधिकांश पारसी मंडलियों के संचालक, अभिनेता, नाटककार, रंगशिल्पी आदि फिल्मों चले गए और कुछ लोगों ने स्वतंत्र नाटक मण्डलियों की स्थापना की है। अतः भारतीय रंगमंच के इतिहास में पारसी थियेटर को नए आलोचकों ने उचित स्थान नहीं दिया। उन्होंने उसे घटिया, बाजारू, रंग-बिरंगे सीन वाला थियेटर कहकर निंदा की है। लेकिन गहरी दृष्टि से विचार करे तो पारसी रंगमंच ने ही समस्त भारत में नाटक क्षेत्र को विस्तृत करने का काम किया है उसे हम नकार नहीं सकते।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1.धर्मयुग (वह पारसी थियेटर वास्तव में क्या था, 15 फरवरी, 1970 - डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल) - संपा. धर्मवीर भारती, पृष्ठ- 20

2.धर्मयुग (हिन्दू ड्रामेटिक कोर और पारसी थियेटर - डॉ. विद्यावती नम्र, 29 मार्च, 1970) - संपा. धर्मवीर भारती, पृष्ठ- 16

3.स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक - डॉ. रामजन्म शर्मा, पृष्ठ- 64

4.स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक - डॉ. रामजन्म शर्मा, पृष्ठ- 65

5.रंगमंच लोकधर्मी-नाट्यधर्मी - डॉ. लक्ष्मीनारायण भारद्वाज, पृष्ठ- 175

6.रंगमंच लोकधर्मी-नाट्यधर्मी - डॉ. लक्ष्मीनारायण भारद्वाज, पृष्ठ- 36

7.हिंदी रंगमंच का इतिहास (भाग-1) - डॉ. चन्दूलाल दुबे, पृष्ठ- 77

8.रंगमंच लोकधर्मी-नाट्यधर्मी - डॉ. लक्ष्मीनारायण भारद्वाज, पृष्ठ- 38

9.नई धारा, अंक-1,2 अप्रैल, 1952 (रंगमंच का मोह - गोविंद वल्लभ पंत), पृष्ठ- 25

10.रंगमंच लोकधर्मी-नाट्यधर्मी - डॉ. लक्ष्मीनारायण भारद्वाज, पृष्ठ- 36

11.हिंदी रंगमंच का इतिहास (भाग-1) - डॉ. चन्दूलाल दुबे, पृष्ठ- 97, 98

12.हिंदी रंगमंच का इतिहास (भाग-1) - डॉ. चन्दूलाल दुबे, पृष्ठ- 157